Gyanvividha, Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026 : PP-384-388

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-6.125
Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026
Page No.- 384-388
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com
Author's :

सूरज आर्य
शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़.

Corresponding Author :

सूरज आर्य
शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़.

भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का प्राचीन एवं आधुनिक दृष्टिकोण

सार : प्रस्तुत शोध भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के उद्भव, विकास और रुपांतरण का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक विश्लेषण करता है। वैदिक साहित्य, विशेषतः ऋग्वेद के पुरुष सूक्त तथा भगवद्गीता में वर्ण को 'गुण' एवं 'कर्म' पर आधारित सामाजिक संगठन के रूप में निरुपित किया गया है, जिसका मूल उद्देश्य सामाजिक समन्वय, दायित्वबोध और नैतिक अनुशासन की स्थापना था। प्रारंभिक वैदिक काल में यह व्यवस्था अपेक्षाकृत लचीली एवं कर्मप्रधान थी, परंतु उत्तरवैदिक और धर्मशास्त्रीय काल में यह क्रमशः जन्माधारित एवं वंशानुगत संरचना में परिवर्तित हो गई। इस परिवर्तन ने वर्ण और जाति के मध्य के सैद्धांतिक अंतर को धुंधला करते हुए सामाजिक स्तरीकरण को स्थायी रुप प्रदान किया।

यह अध्ययन वर्ण व्यवस्था को केवल धार्मिक या सांस्कृतिक परंपरा के रुप में नहीं, बल्कि सत्ता, ज्ञान और अर्थव्यवस्था से संबद्ध बहुस्तरीय सामाजिक तंत्र के रुप में व्याख्यायित करता है। साथ ही आधुनिक काल में सामाजिक सुधार आंदोलनों तथा समानता और सामाजिक न्याय के विमर्श का विश्लेषण भी किया गया है। निष्कर्षतः यह शोध वर्ण व्यवस्था को भारतीय सामाजिक इतिहास के एक गतिशील एवं विवादास्पद आयाम के रूप में पुनर्परिभाषित करने का प्रयास करता है।

प्रस्तावना : भारतीय समाज को समझने के लिए वर्ण व्यवस्था का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। वैदिक काल से ही भारतवर्ष में वर्ण व्यवस्था का प्रचार प्रसार रहा है। वर्णव्यवस्था भारतीय समाज की एक केंद्रीय अवधारणा है, जिसका उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज के मध्य कर्तव्य नैतिकता एवं अनुशासन की स्थापना करना है। वर्णव्यवस्था के अंतर्गत समाज को गुण कर्म एवं स्वभाव के आधार पर चार वर्णों ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र में विभाजित किया गया था । वर्ण शब्द का अर्थ केवल

जाति नहीं अपितु मनुष्य की प्रवृत्ति और कर्म से जुड़ा हुआ है। स माज को केवल चार वर्गों में विभाजित करने के पीछे एक वैज्ञानिक कारण भी ढूंढा जा सकता है। ज्ञान रक्षा आजीविका एवं सेवा यह मनुष्य की स्वाभाविक इच्छाएं होती हैं। इन्हीं चार इच्छाओं की पूर्ति के लिए समाज को चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया था ।

वर्ण शब्द का अर्थ : वर्ण शब्द को समझने के लिए इसकी संरचना का अवलोकन करना आवश्यक है वर्ण शब्द तीन धातुओं से निष्पन्न हो सकता है- **वृण्प्रीणने**[1] आनन्द करना, सन्तोष पाना, **वर्ण प्रेरणे**[2] प्रेरित करना**, वृञ् वरणे**[3] वरण करना या चुनना क्योंकि वर्ण शब्द का अर्थ सामाजिक वर्ग से लिया गया है अतः अंतिम धातु से इसकी व्युत्पत्ति मानना उचित है।

वर्ण और जाति में अंतर : अक्सर लोग वर्ण और जाति को एक ही मान लेते हैं, लेकिन शोध की दृष्टि से इनमें मौलिक अंतर है

वर्ण: यह एक व्यापक वर्गीकरण है जिसकी संख्या केवल चार है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र यह वर्गीकरण 'गुण' (स्वभाव) पर आधारित था।

जाति: यह हजारों की संख्या में हैं और पूरी तरह 'जन्म' पर आधारित होती है। समालोचकों का आकलन है कि वर्ण की गलत व्याख्या के कारण जाति का उद्भव हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि वर्णों को जाति के नाम से जाना जाने लगा। ब्राह्मण को ब्राह्मण जाति, क्षत्रिय को क्षत्रिय जाति, वैश्य को वैश्य जाति तथा शूद्र को शूद्र जाति से जाना जाने लगा। वर्ण के जाति में परिवर्तित होने का मुख्य कारण बना जन्म एवं वंशानुगत व्यवस्था। प्रत्येक जाति का एक परम्परागत (वंशानुगत) निश्चित व्यवसाय होता था। जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता रहता था। कुछ परिस्थितियों में व्यक्ति अपना व्यवसाय बदल लेता था, जिसकी अनुमति थी। जिस कारण अनेक उपजातियों का उदय हुआ

वर्णों की उत्पत्ति : वर्ण व्यवस्था का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में मिलता है, जहाँ समाज को चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—में विभाजित किया गया। इसके अनुसार चारों वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई है, उस विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्रिय जंघा से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहू राजन्यःकृतः।[4]
ऊरुतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।

उपर्युक्त विराट पुरुष के स्वरूप का प्रतीकात्मक अर्थ लिया गया है उस पुरुष को समाज का प्रतीक माना गया है। इस पुरुष के मुख भुजा जंघा तथा पैर से चारों वर्णों की उत्पत्ति यह दर्शाती है कि जितना महत्व शरीर में इन अंगों का होता है उतना ही समाज में चारों वर्णों का होता है

गीता में श्री कृष्ण का कथन है कि गुण तथा कर्म के अनुसार चारों वर्णों की सृष्टि की गई है तथा उसके कर्ता तथा विनाशक वह स्वयं है

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।[5]
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।

प्रारंभिक वैदिक काल में यह विभाजन जन्म पर नहीं बल्कि कर्म और योग्यता पर आधारित था। ब्राह्मणों का कार्य ज्ञान और शिक्षा, क्षत्रियों का कार्य शासन और रक्षा, वैश्यों का कार्य व्यापार और कृषि तथा शूद्रों का कार्य सेवा माना गया।

वर्णों के प्रकार तथा कर्तव्य : वर्ण व्यवस्था मुख्यतः चार वर्णों में विभाजित थी:

1. **ब्राह्मण-** ब्राह्मण वर्ण को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। उनका मुख्य कर्तव्य वेदों का अध्ययन एवं अध्यापन करना, यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठानों का संचालन करना तथा समाज को नैतिक और धार्मिक शिक्षा प्रदान करना था।

इसके अतिरिक्त वे राजाओं को परामर्श देते थे और धर्म की रक्षा का कार्य करते थे। ब्राह्मणों को दान ग्रहण करने तथा दान देने का अधिकार भी प्राप्त था।

अध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं तथा।[6]

दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।

शमो दमस्तप:शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।[7]

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्।।

2. **क्षत्रिय**– क्षत्रिय वर्ण का प्रमुख कर्तव्य राज्य की रक्षा करना तथा शासन व्यवस्था का संचालन करना था। वे समाज की आंतरिक और बाह्य सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होते थे। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध युद्ध करना, प्रजा की रक्षा करना और समाज में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना क्षत्रियों के मुख्य कार्य थे। क्षत्रिय साहस, शौर्य और नेतृत्व के प्रतीक माने जाते थे।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवच।[8]

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासत:।।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।[9]

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम्।।

3. **वैश्य**– वैश्य वर्ण का कार्य समाज की आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करना था। कृषि करना, पशुपालन करना और व्यापार करना उनके प्रमुख कर्तव्य थे। वैश्य वर्ग धन के उत्पादन और वितरण के माध्यम से समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। आर्थिक गतिविधियों के संचालन से वे राज्य और समाज दोनों को सहयोग प्रदान करते थे।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव।

वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।[10]

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्।।[11]

4. **शूद्र**– शूद्र वर्ण का मुख्य कर्तव्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना तथा श्रम आधारित कार्यों को करना था। वे हस्तशिल्प, कृषि कार्यों में सहयोग और समाज के दैनिक कार्यों में योगदान देते थे। शूद्रों की भूमिका समाज के सुचारु संचालन के लिए आवश्यक मानी जाती थी।

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभु कर्म समादिशत्।

सर्वेषामेववर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।[12]

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।[13]

वर्णों का दार्शनिक एवं सत्ता-संरचनात्मक विश्लेषण : वर्ण व्यवस्था को केवल सामाजिक वर्गीकरण के रूप में समझना पर्याप्त नहीं है; इसे एक वैचारिक संरचनाके रूप में भी देखा जाना चाहिए, जिसने भारतीय समाज में सत्ता, ज्ञान और धार्मिक वैधता के बीच गहरा संबंध स्थापित किया। प्रारंभिक वैदिक साहित्य में वर्ण का स्वरूप अपेक्षाकृत लचीला और कर्मप्रधान प्रतीत होता है, किंतु उत्तरवैदिक एवं धर्मशास्त्रीय काल में यह एक मानकीकृत सामाजिक अनुशासन में परिवर्तित हो गया। इस परिवर्तन की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है।

धर्मशास्त्रों में वर्ण को केवल सामाजिक दायित्वों की व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि 'धर्म' के अंग के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। इस प्रकार सामाजिक कर्तव्य धार्मिक कर्तव्य में रूपांतरित हो गए। परिणामस्वरूप वर्ण-आधारित भूमिकाएँ नैतिक और दैवी स्वीकृति प्राप्त करने लगीं। जब कोई सामाजिक संरचना धार्मिक वैधता प्राप्त कर

लेती है, तो उसका प्रतिरोध कठिन हो जाता है। यही वह बिंदु है जहाँ वर्ण व्यवस्था सामाजिक अनुशासन से आगे बढ़कर सामाजिक नियंत्रण का माध्यम बन जाती है।

यदि इसे सत्ता-संरचना के संदर्भ में देखा जाए, तो ज्ञान और अनुष्ठान पर नियंत्रण रखने वाला वर्ग वैचारिक प्रभुत्व स्थापित करता है, जबकि राजनीतिक और सैन्य शक्ति क्षत्रिय वर्ग के हाथ में रहती है। आर्थिक संसाधनों का संचालन वैश्य वर्ग करता है, और श्रम-आधारित कार्य शूद्रों के हिस्से में आते हैं। इस प्रकार समाज में कार्य-विभाजन के साथ-साथ शक्ति-विभाजन भी अंतर्निहित हो जाता है। यह संरचना स्थिर नहीं थी; समय के साथ विभिन्न क्षेत्रों में इसके स्वरूप में परिवर्तन होते रहे, किंतु इसकी मूल अवधारणा श्रेणीबद्धता पर आधारित रही।

दार्शनिक दृष्टि से गीता में वर्ण को 'गुण' और 'कर्म' पर आधारित बताया गया है, जो इसे एक नैतिक-आधारित व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करता है। परंतु ऐतिहासिक व्यवहार में यह व्यवस्था धीरे-धीरे जन्म-आधारित हो गई। यहाँ एक वैचारिक विरोधाभास उभरता है—शास्त्रीय आदर्श और सामाजिक यथार्थ के बीच। यह विरोधाभास भारतीय सामाजिक इतिहास की एक प्रमुख विशेषता है।

वर्ण व्यवस्था के इस रूपांतरण को सामाजिक स्थिरता और सामाजिक गतिशीलता के द्वंद्व के रूप में भी समझा जा सकता है। एक ओर यह व्यवस्था समाज को संगठित रखने का प्रयास करती है, वहीं दूसरी ओर यह सामाजिक गतिशीलता को सीमित करती है। जब कोई सामाजिक संरचना परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालने में असमर्थ हो जाती है, तब उसमें कठोरता और असमानता का तत्व प्रबल हो जाता है। उत्तरवैदिक काल से मध्यकाल तक यही प्रक्रिया क्रमशः दिखाई देती है।

अतः वर्ण व्यवस्था को केवल धार्मिक परंपरा के रूप में नहीं, बल्कि एक बहुस्तरीय सामाजिक तंत्र के रूप में समझना चाहिए, जिसमें धर्म, सत्ता, अर्थव्यवस्था और नैतिकता का अंतर्संबंध विद्यमान है। इसके ऐतिहासिक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था की स्थिरता उसके नैतिक औचित्य पर निर्भर करती है; जैसे ही वह औचित्य प्रश्नों के घेरे में आता है, परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

समाज पर वर्णों का प्रभाव : वर्ण व्यवस्था ने भारतीय समाज को संगठित रखने में एक समय तक भूमिका निभाई, किंतु इसके नकारात्मक प्रभाव भी व्यापक रहे। समय के साथ यह व्यवस्था जटिल होती गई और अनेक जातियों तथा उपजातियों का निर्माण हुआ, जिससे सामाजिक असमानता बढ़ी। इस व्यवस्था के कारण सामाजिक भेदभाव, ऊँच-नीच की भावना और छुआछूत जैसी कुरीतियाँ उत्पन्न हुईं। शिक्षा और संसाधनों तक सीमित पहुँच ने समाज के निचले वर्गों के विकास को बाधित किया।

वर्णों की आलोचना : भक्ति आंदोलन, बौद्ध और जैन धर्म, तथा आधुनिक समाज सुधारकों जैसे महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव अंबेडकर और ज्योतिबा फुले ने वर्ण व्यवस्था की कठोरता और अन्यायपूर्ण स्वरूप की आलोचना की। डॉ. अंबेडकर ने इसे सामाजिक समानता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा माना और संविधान के माध्यम से समान अधिकारों की स्थापना की।

वर्तमान स्थिति : वर्तमान समय में भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का स्वरूप पहले जैसा नहीं रहा है। संवैधानिक दृष्टि से भारत एक लोकतांत्रिक और समानता पर आधारित राष्ट्र है, जहाँ किसी भी प्रकार के वर्ण या जाति आधारित भेदभाव को असंवैधानिक माना गया है। भारतीय संविधान सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है तथा जाति, धर्म, वर्ण या लिंग के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है।

आधुनिक युग में वर्ण व्यवस्था का पारंपरिक कर्म आधारित स्वरूप लगभग समाप्त हो चुका है। शिक्षा, औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिक संचार साधनों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास ने सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। आज व्यक्ति का सामाजिक स्थान उसके जन्म से अधिक उसकी शिक्षा, योग्यता और

आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। रोजगार के क्षेत्र में भी वर्ण आधारित कार्य-विभाजन समाप्त होता जा रहा है। हालाँकि कानूनी रूप से वर्ण व्यवस्था को मान्यता नहीं है, फिर भी व्यवहारिक स्तर पर समाज के कुछ हिस्सों में जाति और वर्ण की मानसिकता अब भी विद्यमान है। विवाह, सामाजिक संबंध और राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव कहीं-कहीं देखने को मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह धीरे-धीरे कमजोर पड़ रहा है।

सरकार द्वारा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण तथा कल्याणकारी योजनाएँ लागू की गई हैं, जिनका उद्देश्य सामाजिक समानता स्थापित करना और ऐतिहासिक अन्याय की भरपाई करना है। इन उपायों से वंचित वर्गों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है, किंतु साथ ही इससे सामाजिक तनाव की स्थितियाँ भी उत्पन्न हुई हैं।

आधुनिक भारत में संविधान द्वारा जाति और वर्ण के आधार पर भेदभाव को अवैध घोषित किया गया है। अनुच्छेद 14 समानता का अधिकार देता है और अनुच्छेद 17 छुआछूत को खत्म करता है। शिक्षा और रोजगार में आरक्षण जैसी नीतियाँ सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए लागू की गई हैं। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों और कुछ सामाजिक परिस्थितियों में वर्ण आधारित भेदभाव आज भी देखा जाता है।

निष्कर्ष : वर्ण व्यवस्था भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तत्व रही है। जहाँ एक ओर इसने समाज को व्यवस्थित किया, वहीं दूसरी ओर इसने सामाजिक असमानता को भी जन्म दिया। आज आवश्यकता है कि हम समानता न्याय और मानव गरिमा को प्राथमिकता दें, तथा इसके ऐतिहासिक संदर्भ को समझते हुए एक उच्चस्तरीय समाज का निर्माण करें।

सन्दर्भ :

1. पाणिनि मुनि कृत धातुपाठ तुदादिगण
2. पाणिनि मुनि कृत धातुपाठ चुरादिगण
3. पाणिनि मुनि कृत धातुपाठ स्वादिगण
4. ऋग्वेद 10.90.12
5. श्रीमद्भगवद्गीता 4.13
6. मनुस्मृति 1.88
7. श्रीमद्भगवद्गीता 18.42
8. मनुस्मृति 1.89
9. श्रीमद्भगवद्गीता 18.43
10. मनुस्मृति 1.90
11. श्रीमद्भगवद्गीता 18.44
12. मनुस्मृति 1.91
13. श्रीमद्भगवद्गीता 18.44

•